1. नामदेव

हमारे देश में संतों की एक महान परंपरा रही है। कबीर के पूर्ववर्ती संतो में नामदेव का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। तत्कालीन संतों में से महाराष्ट्र के वारकरी संप्रदाय के अग्रणी कवि तथा विट्ठल के परम भक्त संत नामदेव का जन्म हिंगोली जिले के नरसी बामनी गाँव में सन 1270 ई.में हुआ और देहावसान सन 1350 में तीर्थक्षेत्र पंढरपुर में हुआ। नामदेव के दादा का नाम नरहरी शेटी, पिता का नाम दामा शेटी और माता का नाम गोनाबाई था। वे जाति से दर्जी थे और उन्होंने स्वयं को छिपी (शिंपी) कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि उनके परिवार में कपड़ों की सिलाई और छपाई का व्यवसाय चलता था। बचपन से ही नामदेव विट्ठल–भक्ति में लीन रहते थे, उसी समय उनका विवाह गोविंद शेटी सदावर्ते की बेटी रजाई के साथ हुआ जिनसे उन्हें चार बेटे और एक बेटी हुई।

संत नामदेव का मन अपनी घर–गृहस्ती में नहीं लगा, तब वे पंढरपुर जाकर विट्ठल की सेवा करने लगे। पंढरपुर में ही उनकी मुलाकात संत ज्ञानेश्वर और उनके भाई–बहनों से हुई। उनकी प्रेरणा से उन्होंने विसोबा खेचर से गुरु दीक्षा ली थी। अपनी गुरु–भक्ति के बारे में उन्होंने स्वयं कहा था कि,

तनो मेरी सुई मनो मेरा धागा,
खेचर जी के चरणों में नामा सिंपी लागा।

गुरु से दीक्षा लेने के बाद संत नामदेव ने संत ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत का भ्रमण करते हुए काशी, गया,. अयोध्या, हरिद्वार, पंजाब, गुरदासपुर, जालंधर, हिसार, मथुरा आदि स्थानों की तीर्थ यात्राएँ भी की थी, जहाँ आज भी इनके अनुयाई मिलते हैं। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम बीस वर्ष पंजाब के गुरदासपुर जिले के घुमान नामक स्थान पर बिताए थे, जहाँ आज भी बाबा नामदेव जी नामक गुरुद्वारा है। कहा जाता है कि दिल्ली के बादशाह आलम उर्फ अलाउद्दीन ने भी घुमान जाकर संत नामदेव की भेंट की थी। संत नामदेव को हिंदी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत भक्ति–काल के कवि के रूप में जाना जाता है। उन्होंने निर्गुण और सगुण ईश्वर–भक्ति के पदों की रचना की है। उनके पदों में ज्ञान और भक्ति का मणिकांचन संयोग दिखाई देता है।

मूलतः संत नामदेव एक मानवतावादी विचारों को लेकर चलनेवाले संत थे। इसी कारण उनके पदों में ईश्वर की भक्ति, गुरु का महत्व, संतों की संगति,

गुण–कथन, बोधात्मकता, आत्मनिवेदन तथा राष्ट्रीय एकात्मता की अभिव्यक्ति हुई है। उनके अनुसार ईश्वर इस सृष्टि के घट–घट में व्याप्त है। अतः उनकी भक्ति सच्चे मन से करनी चाहिए। उच्च वर्णियोंद्वारा नामदेव को प्रताड़ित करने के बावजूद भी वे सच्चे हृदय से विट्ठल की भक्ति करते रहे। उनकी सच्ची भक्ति–भावना के बारे में कहा गया है कि,

"टाल बिना लेकर नामा राऊल में गाया।
पूजा करते ब्राह्मण उनैन बाहर ढकाया।।
देवल के पीछे नामा अल्लक पुकारे।
जिदर जिदर नामा उदर देऊल ही फिरे।।"

नामदेव के अनुसार विट्ठल की भक्ति में पाखंड और बाह्याडंबरों के लिए कोई स्थान नहीं है। नामदेव के पद समाज में फैली विषमता एवं धर्म में चल रहे बाह्याडम्बरों पर प्रहार कर समाज में समता एवं मानवता स्थापित करने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए आज के संदर्भ में समाज की विविध समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए संत नामदेव के विचार हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, प्रासंगिक हैं।

रचनाएँ– संत नामदेव ने विट्ठल को अपना आराध्य मानकर उनके प्रति अपने भक्ति–भाव को पदों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। संत नामदेव की रचनाएँ मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में पाई जाती है। नामदेव की रचना 'नामदेव गाथा' में ढाई हजार मराठी अभंग संकलित हैं। उनके हिंदी पदों की संख्या 230 बताई जाती है। साथ ही साथ सिखों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में 61 पद संकलित हैं और 'सकल संत गाथा' में इनके 102 हिंदुस्तानी भाषा के पद पाए जाते हैं। हिंदी का ब्रज और खड़ीबोली का मिश्रित रूप इनके पदों में मिलता है। एक आध पद में फारसी भाषा का प्रयोग भी पाया जाता है।

नामदेव ने पंढरपुर के विट्ठल को अपना आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति–भावना को व्यक्त किया है। उनके अनुसार भक्तों को अपने सच्चे हृदय से ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। वे सबसे पहले **नामस्मरण की महत्ता** पर बल देते हुए कहते हैं कि ईश्वर का (विठ्ठल) नाम स्मरण हीरे की तरह मूल्यवान है, क्योंकि उनका नाम लेते ही संसार कि हमारी समस्त पीड़ाएँ नष्ट हो जाती है। हरि का नाम जाति–पाँति के परे है। अतः धर्म, जाति, संप्रदाय से हटकर हरि का नाम लेने से हमारे संपूर्ण जीवन में एक सकारात्मक, विकासात्मक परिवर्तनरुपी क्रांति आ जाती है। इसीलिए संत नामदेव कहते हैं कि हमारे जीवन में समस्त सुखों की राशि हरि का नाम मात्र है। हरि का नाम लेने से हम यम का (मृत्यु का) पासा काट सकते हैं। अर्थात हम जन्म मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं। हरि अर्थात विट्ठल का नाम ही समस्त संसार का सार है। नामदेव कहते कि उनका नाम स्मरण करने से हमारे जीवन के समस्त दोष दूर हो जाते हैं।

Scanned by CamScanner

संत नामदेव ईश्वर की भक्ति को प्राप्त करने के लिए ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसीलिए उन्होंने अपने जीवन में ज्ञान प्राप्ति के लिए **गुरु की महत्ता** को समझना आवश्यक माना है। गुरु की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं कि गुरु ने ही मेरे जन्म को सफल बनाया है। मेरे विविध दुखों को भूलाकर उन्होंने ही मुझे अपने पास लिया और अपना ज्ञान रुपी अंजन मेरी आँखों में डालकर मेरी आँखों से अज्ञान की पट्टी को हटा दिया है अर्थात् मेरी आंखें खोल दी। परिणाम स्वरूप अब मुझे राम नाम के बिना मेरा जीवन हीन लगने लगता है। इसीलिए वे कहते हैं कि ईश्वर का नाम स्मरण करने से मनुष्य को समस्त संसार का जीवन शिव के समान लगता है।

नामदेव के अनुसार संतों की संगति से हमें ईश्वर की भक्ति सहजता से प्राप्त होती है। इसीलिए उन्होंने **सत्संगति की महत्ता** को स्वीकारने की बात कही है। संत ही हमें ईश्वर की ओर जाने का रास्ता बताते हैं और सांसारिक माया–मोह से बचने का उपदेश भी देते हैं। नामदेव यहाँ सांसारिक आकर्षण तथा मोह को माया का जाल मानते हुए उससे बचने के लिए साधक अर्थात मनुष्य को कहते हैं कि, हे मनुष्य (मन) तू एक पंछी की तरह इस संसार रूपी मायाजाल के पिंजरे में मत पड़। अपने इस शरीर रूपी यौवन पर गर्व मत कर क्योंकि वह मृत्यु के बाद एक तिनके के समान जलकर नष्ट होने वाला है। यह जीवन एक कांच के घड़े की तरह है, जिसमें पानी कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता क्योंकि उसके टूटने से पानी बाहर फैलकर पंच तत्वों में मिल जाता है, नष्ट हो जाता है। ठीक उसी तरह आत्मा के बिना तेरा यह शरीर भी नश्वर है। इसीलिए नामदेव कहते हैं कि, है साधक तू मेरी बात ध्यान से सुन और संतों की संगति धारण कर, जिससे तेरा जीवन सफल हो जाए।

नामस्मरण की महत्ता

हरि नांव हीरा हरि नांव हीरा।
हरि नांव लेत मिटै सब पीरा।।1।।
हरि नांव जाति हरि नांव पांति।
हरि नांव सकल जीवन मैं क्रांति।।2।।
हरि नांव सकल सुषम की रासी।
हरि नांव काटै जम की पासी।।3।।
हरि नांव सकल भुवन ततसारा।
हरि नांव नामदेव उतरै पारा।।4।।

गुरु की महत्ता

सफल जनमु मो कउ गुर कीना।
दुख बिसारि सुख अंतरि लीना।।1।।
गिआन अंजनु मो कउ गुरि दीना ।
रामनाम बिनु जीवनु मन हीना।।2।।
नामदेइ सिमरन करि जानां।
जग जीवन सिउ जीउ समानां।।3।।

सत्संगति की महत्ता

मन पंछीया मत पड़ पिंजरे।
संसार मायाजाल रे।।1।।
तन जोवन रूप कारण।
न कर गर्व गव्हार रे।।2।।
एक दिनमो तिन विरिया।
सदा झमकत काल रे।।3।।
कुम्भ काच्या निर भरिया।
बिनसत नहिं वार रे।।4।।
कहत नामदेव सुन भई साधु।
साधु संगत धरना रे।।5।।

■■■

Scanned by CamScanner

2. संत कबीर

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति–काल को 'स्वर्ण युग' नाम से जाना जाता है, क्योंकि इस काल के कवियों की वाणी में केवल लोकमंगल की भावना मात्र थी। इन्होंने सामाजिक मूल्यों को पुनर्गठित करते हुए जन कल्याण के लिए जो अमूल्य वैचारिक एवं साहित्यिक योगदान दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसे स्वर्णयुग कहे जानेवाले भक्ति–काल की निर्गुण–भक्ति धारा के अंतर्गत ज्ञान–मार्गी शाखा के प्रमुख कवि एवं प्रवर्तक संत कबीर को माना जाता है। संत कबीर के जन्म और मृत्यु को लेकर विद्वानों में अलग–अलग मतभेद पाए जाते हैं। अनेक तर्क वितर्क के बाद विद्वानों के अनुमान के अनुसार संत कबीर का जन्म ई.स.1398 (संवत् 1455) और मृत्यु ई.स.1518 (संवत् 1575) में काशी के पास मगहर में मानी जाती है।

किवदंती के अनुसार संत कबीर का जन्म एक हिंदू विधवा ब्राह्मणी के कोख से हुआ था, जिसने लोकलाज के कारण उस नवजात शिशु को लहरतारा नामक तालाब के पास छोड दिया था। वहाँ से नीमा और नीरू नामक इस्लाम दांपत्य जा रहे थे, जो निसंतान थे। अतः उन्होंने उस नवजात शिशु को उठाकर अपने पुत्रवत उसका पालन–पोषण किया। कबीर जाति के जुलाहा थे। कबीर की शादी बनखंडी वैरागी की कन्या लोई के साथ हुई थी, जो काफी सुंदर और पति परायण महिला थी। उनसे कमाल और कमाली नामक दो बच्चों का जन्म हुआ। कबीर बचपन से ही साधु संतों की संगति में आए परिणाम स्वरूप उन्हें आत्मज्ञान मिला। कबीर साहित्य के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उनके गुरु का नाम स्वामी रामानंद था।

कबीर ने निर्गुण ईश्वर की उपासना की है। उनके अनुसार ईश्वर निर्गुण निराकार है, उसका न कोई रंग है, न रूप है,न आकार है, अपितु वह इस सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है। वह पुष्प की गंद की तरह है जिसे देखा नहीं जा सकता केवल अनुभूति ली जा सकती है। इस बात को लेकर कबीर ने कहा भी है कि,

"जाका मुंह माथा नाही, नाही रूप अरूप।
पुहुप गंध ते पातरा, ऐसा तत् अनूप।।"

कबीर ने अपनी निर्गुण–भक्ति के माध्यम से समाज में प्रचलित धार्मिक पाखंड, सांप्रदायिकता, जाति–पांति एवं छुआछूत की भावना, ऊंच–नीचता,

कर्मकांड, अनिष्ट रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। समाज में फैली विविध विषमताओं से ऊपर उठकर मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना करने का प्रयास किया। खासकर तत्कालीन हिंदू–मुस्लिम धर्म में चल रहे धार्मिक भाह्याडम्बरों का तथा अंधविश्वासों का विरोध कर समाज में समता और मानवता की स्थापना करने का प्रयास किया है। नाम की महिमा, गुरु का महत्व, माया से सावधानता धार्मिक बाह्याडम्बरों के भेदभावों पर प्रहार, जाति–पांति का विरोध आदि उनके काव्य की विशेषताएं हैं। महात्मा कबीर परम संतोषी, उदार, स्वतंत्रचेता, निर्भीक, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के उपासक, मानवता के पुजारी, नवीन क्रांति के जनक, दार्शनिक, अध्यात्म के अन्वेषक, आलोचक, युगदृष्ठा कवि तथा क्रांतिकारी सुधारक थे। कहा जाता है कि अपने व्यवसाय की अपेक्षा समाज सुधार की ओर उनका अधिक ध्यान था। वे जो कपड़ा बुनकर बाजार बेचने जाते थे उसे प्रायः साधु के हाथ वितरण करने के लिए छोड़कर खाली हाथ घर लौट आते थे।

कबीर ने अंपने युग की सामाजिक विषमता को मिटाने के लिए अपनी आध्यात्मिकता तथा आत्मज्ञान के अनुभव से धार्मिक भाह्याडम्बर को लेकर चलनेवाले, धर्माधता के कारण हिंसा को बढ़ावा देनेवाले, तथा जाति–पांति के फेरे में फंसे हुए लोगों को जगाने का काम किया है। आज के आधुनिक युग में चारों तरफ बढ़नेवाला अत्याचार, अन्याय, आतंक धार्मिक हिंसा, युद्धजन्य स्थितियाँ, जातीयता, अंधश्रद्धा, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए आज भी हमारे लिए कबीर के विचार महत्वपूर्ण हैं, जो विश्व की सुख–शांति, मानवता और समस्त मानव कल्याण के लिए हैं। इसीलिए आज भी उनके विचार हमारे लिए प्रासंगिक हैं। कबीर के व्यक्तित्व को लेकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि, "वे सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्तों के सामने निरीह, धूर्त भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी इसीलिए वे युग–प्रवर्तन कर सकें।" ऐसे प्रभावी व्यक्तित्ववाले कबीर आज समस्त मानवता के लिए वंदनीय हैं।

रचनाएँ– कबीर संत पहले और कवि बाद में थे। कविता करना उनके जीवन का उद्देश्य नहीं था, किंतु स्वानुभूति से प्रभावित होकर उनकी वाणी से जो भी निकलता था वह काव्य बन जाता था। उनकी अनुभूतियों के भिन्न–भिन्न विषय होने के कारण उनके काव्य में भी विषयों की विविधता पाई जाती है। कबीर घुमक्कड़ प्रवृत्ति के रहने के कारण उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, आरबी, फारसी, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी आदि विविध प्रकार के

Scanned by CamScanner

शब्द मिलते हैं। जिसे देखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी उनकी भाषा को 'खिचड़ी भाषा' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहते हैं। उनकी काव्य–रचना के बारे में कहा जाए, तो कबीर स्वयं अक्षर ज्ञान से वंचित थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'मसि कागज छूयो नहीं, कलम गहयो नहिं हाथ।' अतः उनके समग्र वचनों का संकलन उनके शिष्यों में से धर्मदास नामक शिष्य ने 'बीजक' नाम की रचना में संकलित किया है। इस रचना के तीन भाग हैं– 1) साखी, 2) सबद और 3) रमैनी। इन तीन भागों में से 'साखी' में उपदेशात्मक दोहों का, 'सबद' (पदावली) में बाह्याडम्बरों के विरोध के साथ–साथ ब्रह्म, जीव, माया का वर्णन तथा भगवत प्रेम के अनूठे गीतों का संकलन और 'रमैनी' में दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण विविध राग–रागिनियों के आधार पर हुआ है।

यहाँ पाठ्यक्रम के लिए कबीर के दोहों में से गुरु का महत्व, नाम स्मरण का महत्व, विरह की भावना, जाति–पांति का विरोध, बाह्याडम्बरों का विरोध आदि विचारों को व्यक्त करनेवाले दोहों को लिया गया है। जिनमें से **गुरु का महत्व** बताते हुए कबीर ने कहा है कि, सतगुरु की महिमा अनंत है, अपार है। उन्होंने हमारे आंखों से अंधश्रद्धा का एवं माया–मोह का पर्दा निकालकर हमपर उपकार किए हैं, जिसके कारण हमें आनंद रूप परमात्मा के दर्शन होने में सहायता मिली। इसीलिए सतगुरु का हमारे जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अतः गुरु के बारे में कबीर कहते हैं कि, मेरे सामने अगर गुरु और गोविंद दोनों खड़े होंगे, तो सबसे पहले मैं स्वयं को अपने गुरु के चरणों में समर्पित करूंगा, क्योंकि गुरु ने ही मुझे ईश्वर की ओर जाने की राह दिखाई है। कबीर के अनुसार गुरु की भक्ति पाने के लिए भक्तों को सच्चे हृदय से **प्रभु का नामस्मरण** करना आवश्यक है। उनके अनुसार भक्तों को यदि कुछ चिंता रहती है, तो केवल हरि के नाम स्मरण की। राम नाम के अतिरिक्त व्यक्ति जो कुछ चिंतन करता है वह मृत्यु के फंदे के समान है अर्थात वह उसके नाश का कारण बन जाता है। इसीलिए कबीरदास की पांचों ज्ञानेंद्रियों एवं छठे मन ने प्रभु के प्रिय नाम की रट लगा रखी है जिससे कबीर अपनी समाधि अवस्था में पहुंच गए हैं, जहाँ उनका मन राम के अतिरिक्त और कोई नहीं सोचता। अतः वे कहते हैं कि इसी नामस्मरण के कारण मैंने राम रूपी रत्न को प्राप्त किया है। कबीर के अनुसार ईश्वर प्राप्ति का विलंब भक्तों में **विरह की भावना** को उत्पन्न कर देता है और उन्हें पाने की विरह में विरहिणी आत्मा मार्ग में प्रिय (ईश्वर) की प्रतीक्षा में खड़ी आते जाते पथिक से बड़ी उत्कंठा के साथ प्रिय के आगमन का समाचार पूछती है, उसी प्रकार साधक की भी आत्मा गुरु से अपने प्रिय ब्रह्म की चर्चा सुनना चाहती है कि प्रभु से कब भेंट होगी। बहुत समय तक न मिलने के कारण विरहिणी आत्मा कहती है कि हे राम मैं विरहिणी तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासे हैं।

मेरा मन तुम्हारे दर्शन के बिना व्याकुल हो रहा है, अतः तुम कब मिलोगे। यहाँ विरहिणी आत्मा की अपने परमात्मा को पाने में हुई विरह दशा व्यक्त हो गई है। कबीर के अनुसार ईश्वर की भक्ति के लिए जाति–पांति, धर्म, संप्रदाय, लिंग, आयु की कोई सीमा नहीं होती। कोई भी अपनी सच्ची भक्ति से ईश्वर की भक्ति कर सकता है। इसीलिए कबीर ने जाति–पांति का विरोध किया है। जाति–पांति के भेदभाव का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि ऊँचे कुल में जन्म लेने से कोई भी ऊँचा नहीं होता, ऊँचा होने के लिए उसका कर्म ऊँचा होना चाहिए। जैसे स्वर्ण कितना भी मूल्यवान क्यों न हो स्वर्ण के कलश में अगर शराब भर दी जाए, तो कोई भी संत या साधु उसकी निंदा ही करेगा। इसीलिए कबीर कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति करने के लिए साधु की जाति मत पूछिए, उनका ज्ञान पूछिए। जिस प्रकार तलवार का महत्व होता है, म्यान का नहीं। उसी प्रकार साधु की जाति नहीं बल्कि उनका ज्ञान महत्वपूर्ण होता है उसी ज्ञान से हमें ईश्वर की प्राप्ति होती है। कबीर की दृष्टि से ईश्वर भक्ति में बाह्याडम्बर को कोई स्थान नहीं होता। कबीर ने समाज में चल रहे हैं बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। बाह्याडम्बर करने से ईश्वर की प्राप्ति न होकर हमें नुकसान ही होता है। बाह्याडम्बरों पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं कि लोग माला को धारण कर या उसे घुमाते हुए जाप करने का स्वांग करते हैं। भले ही माला हमारे हाथ में फिरती रहे, जीव्हा मुख में भले ही राम नाम का रट लगाती रहे, लेकिन अगर हमारा मन वहाँ न होकर चारों तरफ माया–मोह में भटकता रहे, तो उसे नामस्मरण नहीं कहा जाता। कबीर के अनुसार नामस्मरण तो सच्चे हृदय से होना चाहिए। कबीर यह भी कहते हैं कि, भले ही साधक तुलसी के काठ की माला गले में धारण करें या उसे घुमाता रहे लेकिन काठ की माला तो कहती है कि हे साधक! मुझे घुमाने से क्या लाभ अगर तुझे सचमुच घुमाना है, तो माया–मोह की ओर से अपने मन को घुमाकर प्रभु–भक्ति में लगा दे, तब जाकर तुझे प्रभु की प्राप्ति होगी।

Scanned by CamScanner

गुरु की महत्ता

सतगुरु की महिमा अनँत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार।।1।।
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारि गुरु अपनै, जिन गोविन्द दियो बताए।।2।।

नामस्मरण की महत्ता

च्यंता तौ हरिं नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चित्तवै राम बिन, सोइ काल की हास।।3।।
पंच संगी पिव पिव करैं, छठा जु सुमिरे मन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतन ।।4।।

विरह की भावना

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैंगे आइ।।5।।
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।6।।

जाति पांति का विरोध

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरै भया,साधू निंदक तोय।।7।।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।8।।

बाह्याडम्बरों का विरोध

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो चहु दिसी फिरै, यह तो सुमिरन नाहीं।।9।।
कबीर माला काठ की, कहीं समझावै तोय।
मन न फिरावै अपना, कहाँ फिरावै मोय।।10।।

■■■

Scanned by CamScanner

3. गोस्वामी तुलसीदास

हिंदी साहित्याकाश में सूर्य की तरह दैदीप्यमान, भक्त चूड़ामणि, कुलमयङक गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सन 1532 में उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के अंतर्गत राजापुर गाँव में हुआ था। तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे, माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति के अनुसार उनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ हुआ और उन्हें तारक नाम का पुत्र भी हुआ था जिसकी मृत्यु हो गई थी। तुलसीदास का बचपन का नाम रामबोला था। कहा जाता है कि रामबोला अशुभ नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता–पिता ने बालक को त्यागकर उसके पालन का भार दासी मुनिया पर सौंपा था। दुर्भाग्य से पालन–पोषण करनेवाली दासी मुनिया भी पाँच वर्ष के अबोध रामबोला को भीख के अन्नपर जीने के लिए छोड़कर परलोक चली गई। उनके पश्चात बालक रामबोला का पालन–पोषण बाबा नरहरीदास ने किया, वही बालक आगे चलकर अपने कर्तव्य कर्म से गोस्वामी तुलसीदास नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाबा नरहरीदास गोस्वामी तुलसीदास के गुरु थे जिन्होंने रामकथा सुनाकर उन्हें राम–भक्ति की ओर उन्मुख किया था। यह भी कहा जाता है कि अत्यधिक आसक्ति से उन्हें पत्नी रत्नावली की मीठी भर्त्सना सुननी पडी थी –

"लाज न लागत आपको दौरे आयहु नाथ,
धिक्–धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहु मैं नाथ।"

इससे उनके जीवन में अचानक परिवर्तन आया और वे राम भक्ति की ओर उन्मुख हो गए। हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति–काल के अंतर्गत निर्गुण–भक्ति और सगुण–भक्ति दो मुख्य धाराएं प्रवाहमान रही है, उनमें से सगुण–भक्ति के अंतर्गत राम–भक्ति और कृष्ण–भक्ति दो उपधाराएं हैं। इनमें से राम–भक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास को माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने विष्णु के अवतार दशरथ पुत्र राम को आराध्य मानकर अपनी भक्ति–भावना को अभिव्यक्त किया है। इस भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं की सहायता ली है।

रचनाएँ– तुलसीदास के काव्य ग्रंथों के संदर्भ में विविध विद्वानों में काफी मतभेद हैं। अधिकतर विद्वान् तुलसीदास द्वारा रचित बारह रचनाओं को प्रामाणिक मानते हैं। जैसे– रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, राम गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, रामचरितमानस, बरवै रामायण, दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक, वैराग्य संदीपनी आदि इनकी चर्चित

Scanned by CamScanner

रचनाएँ हैं। तुलसीदास का समग्र साहित्य समन्वय की एक विराट चेष्टा है क्योंकि इन रचनाओं में उन्होंने सगुण–निर्गुण, शैव– वैष्णव, द्वैत–अद्वैत, ज्ञान और भक्ति आदि में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

'रामचरितमानस' यह हिंदी साहित्य का एक सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। तुलसीदास ने इसे संवत् 1631 से आरंभ किया था। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। अर्थात संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में रामविवाह के दिन इस रचना के सातों कांड पूर्ण हुए थे। 'रामचरितमानस' एक सात कांडों में (बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किषकिंधाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड, उत्तरकांड) लिखा गया चरित काव्य हैं, जिसमें आदर्श पिता, आदर्श बेटा, आदर्श भाई, आदर्श माँ, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श बहू आदि विविध आदर्शों की स्थापना हुई है। इस रचना की कथावस्तु में राम का संपूर्ण जीवन चित्रित हुआ है। राम का अयोध्या त्याग, बन गमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, केवट प्रसंग, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगना और राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा आदि राम–कथा के मार्मिक स्थलों को तुलसीदास ने मार्मिकता के साथ जनता के सामने प्रस्तुत किया है। वास्तविक लोकधर्म की व्यवस्था का पालन करने के लिए उन्होंने राम–भक्ति के निरूपण में सब धर्मों, सब संप्रदायों, सब वर्णों, सबके देवी–देवताओं, पारिवारिक जीवन की समस्त गतिविधियों, सब प्रकार के दोस्तों, सज्जनों, समाज और देश की समस्त उच्च भावनाओंका, ज्ञान और भक्ति के समस्त दार्शनिक विचारोंका, अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि का सुंदरता से समन्वय कर जिस लोक–धर्म की उद्‌भावना की है वही वस्तुतः मानव धर्म है।

आज 'रामचरितमानस' की रचना भारतवर्ष के ही नहीं, समस्तं विश्व के लिए अनुकरणीय है। भारतवर्ष में तो बच्चों से लेकर वृद्धों तक सभी इस ग्रंथ को अपने सिर पर रखते हैं। 'रामचरितमानस' अवधी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है इसमें मुख्य छंद चौपाई है। इसके साथ–साथ दोहा, सोरठा, हरिगीतिका आदि छंदों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने यह रचना स्वान्तः सुखाय के लिए लिखी थी, जो सर्व हिताय बन गई। तुलसीदास के प्रखर व्यक्तित्व को लेकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, ''तुलसीदास का महत्व बताने के लिए विद्वानों ने अनेक प्रकार की तुलनामूलक उक्तियों का सहारा लिया है। नाभादास ने अपने भक्तमाल में इन्हें कलिकाल का वाल्मीकि कहा था, स्मिथ ने उन्हें मुगलकाल का सबसे बड़ा व्यक्ति माना था, ग्रियर्सन ने इन्हें बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा है। यह तो बहुत बार बहुत लोगों ने कहा है कि उनकी रामायण भारत की बाईबल है। यह सारी उक्तियों का तात्पर्य यही है कि तुलसीदास असाधारण शक्तिशाली कवि, लोकनायक और महात्मा थे।'' इस प्रकार संपूर्ण विश्व में एक प्रभावी और प्रतिभाशाली संत

एवं कवि के रूप में गोस्वामी तुलसीदास हमारे सामने आ जाते हैं। उनके द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' की कथा में से 'शबरी प्रसंग' को पाठ्यक्रम में रखा गया है।

शबरी प्रसंग– गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के अंतर्गत अरण्यकांड में से यह 'शबरी प्रसंग' लिया गया है। इस प्रसंग की विशेषता यह है कि शबरी नामक एक निम्न जाति की स्वयं को तुच्छ समझनेवाली स्त्री के आश्रम में जाकर प्रभु रामचंद्र स्वयं शबरी की जाति, धर्म देखें बिना शबरी द्वारा दिए गए फलों का प्रेम सहित सेवन करते हैं। यहाँ उनका भक्तवत्सल रूप हमारे सामने आ जाता है। इतना ही नहीं प्रभु राम शबरी को 'नवधा–भक्ति' प्रदान करते हैं, जो बड़े–बड़े तपस्वी को भी मिलना दुर्लभ होती है। कहने का तात्पर्य है कि भक्ति के लिए किसी धर्म, संप्रदाय, जाति, लिंग, आयु, की आवश्यकता नहीं होती। सच्चे मन से कोई भी अगर भक्ति करता है, तो उसे ईश्वर की प्राप्ति होती है। वह ईश्वर की भक्ति को प्राप्त कर सकता है। यही तुलसीदास ने इस प्रसंग में से बताने का प्रयास किया है, जो आज के संदर्भ में समाज में जाति, धर्म, संप्रदाय, लिंगभेद, आयु, देश, काल के परे जाकर सभी में मानवता और समता की स्थापना करने में सहायक साबित होता है।

शबरी प्रसंग के बारे में कहना हो तो रावन द्वारा सीता–हरण के पश्चात जब प्रभु रामचंद्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ शबरी के आश्रम में आते हैं, जहाँ वर्षों से प्रभु के दर्शन की अभिलाषा में बैठी शबरी जब ऋषि–मुनि के वेश में पधारे दो भाइयों को देखती है, तो आनंद से गदगद हो जाती है। उनके प्रेम में वह इतनी मग्न होकर उनकी तरफ देखने लगती है कि उसके मुख से कोई वचन नहीं निकलते। बार–बार वह प्रभु राम के चरण कमलों में अपना सिर नवाने लगती है। पुनः वह जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोती है और उन्हें सुंदर आसनों पर बिठाती है। दोनों आसन पर बैठने के बाद शबरी अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंद, मूल और फल लाकर प्रभु राम जी को देती है, जिसे प्रभु राम बार–बार प्रशंसा करते हुए प्रेम के साथ खाने लगते हैं। शबरी सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती है और प्रभु को देखकर कहने लगती है कि हे प्रभु ! जो अधम से भी अधम है, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यंत अधम हैं, और उनमें भी मैं तो मंदबुद्धि हूँ। यह सुनकर श्री रघुनाथ जी ने कहा, हे भामिनी ! मेरी बात सुन। चाहे किसी भी जाति, धर्म, संप्रदाय का मनुष्य हो या कोई स्त्री हो, मैं तो केवल एक भक्तिही का संबंध मानता हूँ। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता इन सबके होनेपर भी भक्ति से रहित मनुष्य ऐसा लगता है, जैसे जलहीन बादल दिखाई पड़ता है।

Scanned by CamScanner

प्रभु राम शबरी को कहते हैं कि मैं तुझसे अब अपनी 'नवधा–भक्ति' कहता हूँ। तू सावधान होकर उसे ध्यान से सुन और अपने मन में धारण कर। प्रभु रामचंद्र शबरी को अपनी नवधा–भक्ति बताते हुए कहते हैं कि, पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसंग में प्रेम रखना। तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा करना। चौथी भक्ति यह है कि, कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करें। पाँचवी भक्ति जो वेदों में प्रसिद्ध है जिसमें मेरे (राम) मंत्र का जाप करते हुए मुझमें दृढ़ विश्वास रखना है। छठी भक्ति है इंद्रियोंका निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना। सातवीं भक्ति है समस्त जगत् को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतो को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं भक्ति है सरलता और सब के साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवधा–भक्ति में से जिनके पास एक भी भक्ति होती है, वह चाहे स्त्री, पुरुष, जड़, चेतन कोई भी हो, वह मेरे लिए अत्यंत प्रिय है। फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वह आज तेरे लिए सुलभ हो गई है।

यहाँ राजा प्रभु राम ने एक दीन हीन, गरीब शबरी जैसी स्त्री को अपनी 'नवधा–भक्ति' प्रदान कर जाति, धर्म, संप्रदाय, लिंगभेद, आयु, काल आदि के परे जाकर अपने भक्त–वत्सल रूप को दिखाते हुए समाज में समता एवं मानवता की स्थापना की है। निश्चित ही यह शबरी प्रसंग आज भी नवधा–भक्ति के माध्यम से स्त्री–पुरुष, उच्च–नीचता, धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि का भेद न मानते हुए सभी को एकता एवं समानता से देखने की और खासकर स्त्री की ओर सम्मान एवं आदर से देखने की तथा उनके साथ समानता का बर्ताव करने की हमें सीख देता है।

Scanned by CamScanner

शबरी प्रसंग

प्रेम मगन मुख वचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।
सादर जल लै चरण पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे ।।1।।

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।।2।।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानऊँ एक भगति कर नाता।।3।।

जाति पाँति कुल धर्म बडाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।4।।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।5।।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।6।।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।7।।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।8।।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।9।।

सोही अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें।।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई।।10।।

Scanned by CamScanner

4. सूरदास

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति–काल की सगुण–भक्ति धारा के अंतर्गत कृष्ण–भक्ति धारा के प्रख्यात महाकवि सूरदास जी का जन्म दिल्ली के निकट सीहीं नामक गाँव में सन 1478 ई.(संवत् 1535) में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। बाल्यावस्था में ही वे अपने घर से विरक्त होकर निकल पड़े और सीहीं से लगभग चार–पाँच मील दूर किसी अन्य गाँव में तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे बस गए। यहाँ वे लगभग अठारह वर्ष की आयु तक रहे। वहाँ लोगों से उन्हें काफी प्यार मिला। उनका सुरीला कंठ बहुत मधुर था और यहाँ एकांत में बैठकर जब वे गाते थे तब उनका गाना सुनने के लिए वहाँ बहुत से लोग आते थे और ध्यान से सुनते थे। एक रात उन्होंने यह सोचकर कि यहाँ लोगों की माया–मोह से निकलकर मुझे भक्ति के लिए अन्य जगह जाना चाहिए, जहाँ शांति मिलें। अतः अपने वैराग्य भाव की रक्षा तथा माया से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने एक दिन व स्थान छोड़ दिया और वहाँ से चलकर मथुरा आए, जो भगवान कृष्ण का जन्म स्थान था। उन्हें माया–मोह से बचने के लिए वहाँ भी रहना उचित नहीं लगा और वहाँ से निकलकर वे मथुरा के बीच गऊघाट पर पहुँचे और वही यमुना के किनारे एकांत स्थान पर रहना प्रारंभ किया।

गऊघाट में रहकर सूरदास ने काव्य और संगीत का ज्ञान प्राप्त किया और शास्त्रों तथा पुराणों का अध्ययन भी किया। यहीं रहकर ब्रजभाषा पर इन्होंने अधिकार प्राप्त किया। यहाँ उनकी श्री वल्लभाचार्य से भेंट हुई। सूरदास जी ने उन्हें विनय के पद सुनाएँ लेकिन वे वल्लभाचार्य जी को रास नहीं आये, तब श्री वल्लभाचार्य जी ने भागवत पर गाने का उन्हें अनुरोध किया और उनके भागवत के पद सुनकर वल्लभाचार्य जी प्रभावित हुए। सूरदास ने उनसे पुष्टिमार्ग की दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने से पूर्व सूरदास विनय और दैन्य भक्ति के पद गाते थे लेकिन वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से इनके काव्य की धारा ही बदल गई। अब वे पुष्टीमार्ग की दीक्षा के पश्चात कृष्ण को अपना आराध्य मानकर उनके वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भक्ति का गान करने लगे। यहीं से वल्लभाचार्य जी को सूरदास ने अपना गुरु मान लिया और वे श्री वल्लभाचार्य जी के साथ गोवर्धन चले आये।

गोवर्धन आकर श्रीनाथजी की मूर्ति की सेवा में सूरदास मग्न रहने लगे। वहाँ आने के पश्चात सूरदास ने पारसोली को अपना निवास स्थान बनाया।

कहा जाता है कि यहीं पर इनका शेष जीवन व्यतीत हुआ। सूरदास ने श्री कृष्ण की बाल लीला, रासलीला, गोपी प्रेम आदि का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है। वात्सल्य वर्णन के बारे में तो कहा जाता है कि सूरदास ने वात्सल्य का कोना– कोना झाँका है। कृष्ण के बाल रूप तथा किशोर रूप के चित्र अंनूठे बन पड़े हैं। सूरदास ने कृष्ण के नर और नारायण दोनों रूपों की विविध लीलाओं का वर्णन किया है। सूरदास ने अधिकांश पदों की रचना यहीं पर की है। आष्ठछाप कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान था। इस बात को लेकर सूरदास का अंत समय जब निकट आ गया था तब गोसाईं विट्ठलनाथ ने कहा था कि, 'पुष्टिमार्ग का जहाज जा रहा है, जिसे जो लेना हो ले ले।' यहीं पर श्रीकृष्ण की सेवा करते–करते सन 1583 ई. (संवत् 1640) में पारसोली में इनका देहावसान हुआ। अपनी मृत्यु के समय 'खंजन नैन रूप रस माते' वाले दो पद गाकर उन्होंने सूचित किया था कि उनका मन और आत्मा पूर्ण रूप से राधा भाव में लीन है।

रचनाएँ– आधुनिक खोज के अनुसार सूरदास के चोबीस ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। लेकिन इनमें से–

1) सूरसागर,
2) साहित्य लहरी
3) सूर सारावली आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

'सूरसागर' ही इनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना मानी जाती है। इसमें ब्रजभाषा में लिखे लगभग 5000 पद संकलित हैं। जिनमें से 4 हजार से अधिक श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाओं से संबंधित हैं तथा अन्य 1000 पदों में द्वारिका चरित्र, विनय–पद तथा विविध अवतारों का संक्षिप्त वर्णन है। यह एक गेय मुक्तक काव्य है, जिसमें भगवान की लीलाओं का विस्तार है। सूरदास ने इस रचना में श्रीकृष्ण के जीवन के कोमलतम अंशों पर असंख्य लीला के पद रचे हैं। जिसमें से भ्रमरगीत की कल्पना कृष्ण–भक्ति काव्य की मौलिक देन है। सूरदास के भाव चित्रण में वात्सल्य और शृंगार भाव को सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। अचार्य रामचंद्र शुक्ल इस संबंध में लिखते हैं कि, ''वात्सल्य के समान ही शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। गोकुल में जबतक श्रीकृष्ण रहे तब तक उनका सारा जीवन ही संयोग पक्ष के अंतर्गत आता है। दानलीला, माखनलीला, चीरहरण लीला, रासलीला आदि न जाने कितनी लीलाओं पर सहस्त्रों पद भरे पड़े हैं।'' ऐसा लगता है कि, शृंगार वर्णन के अंतर्गत तो संयोग और वियोग की दोनों भावनाओं की अत्यंत विस्तृत और अनूठी लहरें सूरसागर में उठ रही हैं। बालक की विविध चेष्टाओं, विनोदों, बालसुलभ ईर्ष्या, स्पर्धा, मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं आदि भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते

Scanned by CamScanner

हैं। 'सूरसागर' प्रेम का सागर है जिसमें सूरदास ने अपनी सूक्ष्म भाव भंगिमाओं से कृष्ण की संपूर्ण जीवन की लीलाओं को पदों में पिरोया है। इन पदों में वह क्षमता है कि सुननेवालों के सामने वे घटना का एक स्वतंत्र चित्र, एक स्वतंत्र भाव प्रस्तुत करते हैं। चित्रात्मकता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, गेयात्मकता आदि गीति–शैली की सभी विशेषताएँ उनके पदों में मिलती हैं। सूर अंधे थे फिर वे जन्म से अंधे थे या बाद में हुए यह गौण बात है। लेकिन अंधे होकर भी कृष्ण के इतने भावभीने चित्रों को प्रस्तुत करना एक विशेष है। सूरदास के भाव जगत की कलात्मकता तथा रूप माधुर्य वर्णन का जादू, भक्ति का रसामृत, वात्सल्य के संयोग और वियोग के चित्र, श्रृंगार के संयोग और वियोग के भावचित्र तथा प्रकृति का अनूठा वर्णन पाठकों को भावविभोर कर देता है। राधा–कृष्ण के रूप वर्णन में जितने भी पद पाए जाते हैं, उनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया गया है। इस रचना में विविध रसों का प्रयोग किया है गया है लेकिन मुख्य रस भक्ति–रस ही है।

भक्त शिरोमणि महात्मा सूरदास ने विष्णु के अवतार कृष्ण को आराध्य मानकर कृष्ण के बचपन से लेकर युवावस्था तक की नर और नारायण दोनों लीलाओं का वर्णन किया है। इस वर्णन में दैन्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य भक्ति का आधार लिया गया है। श्री वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास ने जिस भक्ति पद्धति का अनुकरण किया था वह वैष्णव संप्रदाय में सख्य कोटि की अनन्य भक्ति थी। सूरदास की रचना में दो प्रकार के भक्ति विषयक पद मिलते हैं एक विनय–भक्ति संबंधित पद और दूसरे माधुर्य–भक्ति संबंधी पद।

विनय–भक्ति– वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे विनय–भक्ति और दास्य भाव के पद बनाकर अपनी भक्ति–भावना का परिचय दिया करते थे। विनय से तात्पर्य प्रार्थना करना अर्थात स्वयं को दीन हीन मानकर निर्गुण निराकार ईश्वर के सामने अपनी मुक्ति की प्रार्थना करना ही विनय–भक्ति है। विनय–भक्ति की साधना में वैष्णव संप्रदाय के अनुसार सात भूमिकाएँ निभानी पड़ती थी। जैसे– दीनता, मानमर्षता, भय–दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा यह वे सात स्थितियाँ थी। इन सातों स्थितियों को ध्यान में रखकर सूरदास अपने पदों की रचना किया करते थे। विनय–भक्ति का आधार दास्य भाव है, जिसमें भक्त स्वयं को दास के रूप में दीन–हीन, तुच्छ मानकर अपने भगवान की उच्चता का वर्णन करता है। कबीर आदि निर्गुण भक्तों की तरह सूरदास भी पहले बहिर्साधना (सगुन सेवा, पूजा) की अपेक्षा आंतरिक साधना (निर्गुण ध्यान, उपासना) का अधिक उपयुक्त समझते थे। उनका निर्गुण ईश्वर इस सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है।

अतः उनके सामने अपने दयनीय भाव को या विनय भाव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि निर्गुण निराकार ईश्वर की स्थिति के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि वह गूंगे के मीठे फल के समान होते हैं। अर्थात जिस प्रकार गूंगा मीठे फल के रस का मन ही मन अनुभव तो करता है लेकिन उसे व्यक्त नहीं कर पाता। वही स्थिति निर्गुण ईश्वर को लेकर भक्तों की होती है। निर्गुण ईश्वर की प्राप्ति का आनंद उच्च कोटि का तथा निरंतर असीम संतोष देनेवाला होता है। निर्गुण ईश्वर मन, बाणी के द्वारा समझने के लिए कठिन होते हैं, जो उसे प्राप्त करता है वही जान सकता है। सूरदास कहते हैं कि ऐसे निर्गुण ईश्वर के रुप, गुण, आकार रहित होने के कारण मेरा मन निरालंब की तरह दौड़ते रहता है। निर्गुण ईश्वर को प्राप्त करने की विधि कठिन समझकर ही सूरदास सगुण ईश्वर की भक्ति करने का निर्णय करते हैं और कृष्ण के सगुण लीला के पद गाने लगते हैं।

वात्सल्य–भक्ति : सूरदास को वात्सल्य भाव के चितेरे कहा जाता है। उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं के वात्सल्य भरे चित्रों को संपूर्ण भावात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। अबोध शिशु और ममतामई माँ के पारस्परिक संबंधों का आधार वात्सल्य भाव होता है। सूरदास ने सर्वप्रथम कृष्ण के शिशु रूप का वर्णन किया है, जिसमें कृष्ण की विविध लीलाएं और उसके प्रति माँ यशोदा का वात्सल्य भरा हुआ दिखाई देता है। बालकृष्ण का रूठना, चांद को खिलौना समझकर मांगना, अपने घुटनों के बल चलना, बलराम के प्रति स्पर्धा का भाव तथा माखन चोरी जैसे विविध प्रसंगों में वात्सल्य भाव झलकने लगता है।

जब बालक कृष्ण माखन चोरी करता है और गोपियाँ उसकी शिकायत माँ यसोदा से करती हैं, तो माँ अपने हाथ में छड़ी लिए उसे डांटने लगती है, तब एक बाल - सुलभ मानसिकता की तरह कृष्ण अपनी झूठी सफाई माँ के सामने पेश करते हुए कहते हैं कि, मैया मैंने माखन नहीं खाया है। मेरे सभी सखाओं नें जानबूझकर मेरे मुख को माखन लगाया है। तू ही देख मेरे ये छोटे–छोटे हाथ ऊंचे सीखेंपर रखे हुए माखन तक कैसे पहुंच सकते हैं। यह कहते हुए उन्होंने माखन से भरे हाथ से अपना मुंह पोंछ लिया और अपने छोटे दोनों हाथ पीठ पीछे छिपा लिए हैं। यह सब देखकर और सुनकर माँ यशोदा का क्रोध चला जाता है और वह हंसते हुए बाल कृष्ण को गले लगाती है। सूरदास कहते हैं कि यह बाल विनोद निश्चित रूप से मन को मोहित करनेवाला, आनंदित करनेवाला और भक्तों का प्रताप दिखानेवाला है। सूरदास के अनुसार बालकृष्ण की इस बाल लीलाओं का यह सुख शिव और ब्रह्मा को भी मिलना कठिन है, वह यहाँ जसोदा को सहजता से मिल रहा है।

विरह भावना– कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात जसोदा तथा गोपियों का कृष्ण के प्रति विरह भाव सूरदास ने बड़े भावविभोर ढंग से चित्रित किया

Scanned by CamScanner

विनय भक्ति

अबिगत–गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ, रस अंतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर, अमित तोष उपजावै।
मन–बानी कौ अगम–अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप–रेख–गुन–जाति जुगति–बिनु, निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातै, सूर सगुन–पद गावै।।1।।

वात्सल्य–भक्ति

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।
देखी तुहीं सीकें पर भाजन, ऊँचौ धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर, अपनै मैं कैसे करि पायौ।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल–विनोद–मोद मन मोह्यौ, भक्ति–प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख सिव बिरंचि नहिं पायौ।।2।।

विरह भावना

उधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस।।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लगि रहति तन स्वासा, जीवहि कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारै नँदनंदन बिनु, और नहीं जगदीश।।3।।

Scanned by CamScanner

5. रहीम

हिंदी साहित्य में बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहीम का जन्म 1556 में सम्राट अकबर के संरक्षक एवं अभिभावक बैरम खां के घर लाहौर में हुआ और मृत्यु 1627 में हुई। हिंदी साहित्य के इतिहास में मुसलमान भक्त कवियों में रहीम सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं। उनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था । मुगल सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक रत्न के रूप में उन्हें प्रसिद्धि मिली थी। अब्दुर्रहीम के जन्म के आसपास ही बैरम खां को खानखाना की उपाधि प्राप्त हुई थी। उनका पारिवारिक जीवन दुखद रहा है। क्योंकि चार वर्ष की अल्पायु में ही रहीम के पिता की मृत्यु हुई, 1598 में उनकी पत्नी का भी निधन हुआ और अपने यौवन काल में पुत्री विधवा हुई। इससे उनका त्रासदीपूर्ण जीवन हमारे सामने आ जाता है। अकबर के साथ रहीम के पिता बैरम खां के मतभेद होने के बाद मुबारक खां लौहानी ने बैरम खां की हत्या कर दी तब रहीम चार वर्ष के थे।

पिता की मृत्यु के बाद रहीम का पालन–पोषण अकबर ने किया। इतना ही नहीं उनका विवाह अपनी धाय की पुत्री माहबानो के साथ किया। अकबर ने रहीम को कुलीन, समदृष्टिवाला, निस्वार्थी और प्रजा का सच्चा सेवक जानकर मीरअर्ज के किताबों से सम्मानित भी किया था। जीवन की इन घटनाओं से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि रहीम को एक तरफ साम्राज्य के बड़े से बड़े पद और प्रतिष्ठा मिली, तो दूसरी तरफ अपमान के कड़वे घूंट भी पीने पडे क्योंकि जहाँगीर के समय ही धोखा देने के अपराध में उनकी सारी जागीर जप्त कर उन्हें कैद भी कर लिया गया था। बावजूद इसी के जीवन का गहरा अनुभव रहीम के व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। उनके समान उदार और बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति मध्य युग में दूसरा कोई नहीं था। दीन, दुखियों का दुख–दर्द उनसे नहीं देखा जाता था। वे लोगों का आदर किया करते थे और गरीबों की सहायता भी करते थे। उनकी दानशूरता को लेकर कहा जाता है कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी से धन मांगने आया तब गोस्वामी जी ने उसे रहीम के पास निम्नलिखित दोहे की पंक्ति लिखकर भेज दिया–

"सुरतिय नरतिय नागतिय, यह चाहत सब कोय"

तब रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुतसा धन देकर विदा किया और साथ–ही–साथ उस दोहे की दूसरी पंक्ति लिखकर पूरी की–

"गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय"

रहीम के विचारों में धार्मिक संकीर्णता कहीं भी नहीं थी। एक मुस्लिम होकर भी उन्होंने कृष्ण–भक्ति को अपनाया है। रहीम एक भक्तों के साथ–साथ कुशल राजनीतिज्ञ, आश्रयदाता, दानवीर, योग्य प्रशासक और वीर सेनापति भी थे। साथ–ही–साथ वे एक भावुक कवि, गंभीर शास्त्रज्ञ, कुशला अनुवादक और बहु भाषाविद और साहित्य के मर्मज्ञ थे। भक्तिभावना, कृष्ण लीलाएँ, नारी सौंदर्य चित्रण, संयोग वियोग वर्णन, नीति, प्रेम मूल्य, प्रकृति वर्णन आदि उनके काव्य की विशेषताएँ हैं। फारसी, संस्कृत, अरबी, बृज, अवधि आदि भाषाओंपर उनका जबरदस्त अधिकार था। उन्होंने अपने काव्य में बरवै, सवैया आदि छन्दों का सफल प्रयोग किया है।

रचनाएँ– खैट कौतुक, नगरशोभा, बरवैनायिकाभेद, बरवै मदनाष्टक, श्रृंगार सोरठा, संस्कृत काव्य, दोहावली, फुटकर काव्य ।

रहीम एक कृष्ण–भक्त संत एवं कवि थे। उन्होंने कृष्ण–भक्ति के साथ–साथ नीति, प्रेम, परोपकार, मान सम्मान आदि को लेकर भी अपने विचारों को प्रस्तुत किया है, जो मनुष्य को अपने जीवन में अत्यंत आवश्यक हैं। रहीम के दोहों में भक्ति–भावना की सरस अभिव्यक्ति हुई है।

कृष्ण के प्रति अपनी **भक्ति–भावना** को व्यक्त करते हुए रैदास कहते हैं कि अनन्यभाव से भगवान के प्रति समर्पित होकर जीवन का श्रेय(मोक्ष) प्राप्त किया जा सकता है। अतः हे मनुष्य जो प्रभु (कृष्ण) अमरबेल जैसी मूल विहीन वल्लरी का भी प्रतिपालन करते हैं अर्थात उसकी उपेक्षा नहीं करते तुम ऐसे अद्वितीय अभिभावक को छोड़कर किसे खोजते घूम रहे हो। अपने ही अंतकरण में विद्यमान परम वत्सल, विश्वंभर, सर्वशक्तिमान भगवान जैसा संरक्षक तुम्हें बाहर कहीं भी नहीं मिलेगा। रहीम को अपने भगवान पर इतना विश्वास है कि वे कहते हैं, हे छली–कपटी, धूर्त–नीच लोगों ! अब रहीम का कोई क्या कर सकता है ? जिस व्यक्ति की प्रतिष्ठा रखनेवाले नवनीत प्रिय भगवान कृष्ण के पदांबुजो की शरण प्राप्त हो गई हो, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है? जिसने जुआरियों, चोर–लबाडों से भरी राज्यसभा में एक दीन–अबला की लज्जा बचा ली थी, अब रहीम उसी भक्तवत्सल भगवान की चरण–शरण में बस गया है। अब रहीम अपराजय है। यहाँ रहीम की कृष्ण के प्रति अपनी असीम तथा अटूट भक्ति–भावना व्यक्त होती है।

समाज में प्रत्येक मनुष्य को दूसरे की **संगति का परिणाम** प्राप्त होता ही है। कभी उसे संगति का अच्छा परिणाम मिलता है, तो कभी बुरे परिणामों का सामना भी करना पड़ता है। रहीम मनुष्य को संगति का परिणाम बताते हुए

Scanned by CamScanner

कहते हैं कि संगति का प्रभाव मनुष्य पर आवश्य पढ़ते रहता है। संगति के प्रभाव को रहीम स्वाति नक्षत्र की एक बूंद के उदाहरण के माध्यम से समझाते हैं। कवि मान्यता के अनुसार स्वाति नक्षत्र के मेघ का जल जब कदली में प्रवेश करता है, तो वह कपूर बन जाता है। वही जल समुद्र की सीपी में जाकर गिरता है, तो मोती का रूप धारण करता है और वही जल जब सर्प के मुंह में जाकर गिरता है, तो विष बन जाता है। इस प्रकार मनुष्य जैसी संगति में बैठेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। लेकिन रहीम के अनुसार सत्पुरुषों पर कुसंगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिसका स्वभाव उत्तम है, कुसंगति उसका क्या कर सकती है ? जैसे चंदन के वृक्षों पर विषधर सर्प लिपटे रहते हैं किंतु विष का प्रभाव चंदनपर नहीं पड़ता। अर्थात सत्पुरुषों की इच्छा–शक्ति इतनी सबल होती है कि कुसंगति में आकर भी वे किसी विकृति से प्रभावित नहीं होते। किंतु दुर्गुणों को निस्तेज करने की क्षमता सर्वसाधारण मनुष्य में नहीं होती, जो धीरे–धीरे कुसंगति की चपेट में आते जाता है।

रहीम के अनुसार मनुष्य के जीवन में **प्रेम का महत्व** सर्वोपरि है। रहीम कहते है कि प्रेम का धागा बहुत ही नाजुक होता है। इसे ऐसे मत झटको की टूट जाए। यदि यह टूट गया तो फिर नहीं जुड़ सकता। अगर जुड़ भी गया तो उसमें गांठ पड़ जाती है। यह गांठ मनोमालिन्य की होती है। अर्थात प्रेम में कपट की ग्रन्थि नहीं होनी चाहिए। यदि कहीं ग्रंथि आ गई तो प्रेम में पहले जैसी बात नहीं रहेगी। अतः मनुष्य को प्रेम के प्रति अतिरिक्त ध्यान रखना होगा। रहीम ईख अर्थात् गन्ने का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ईख तो रसवंती की खान होती है। किंतु यह देखा जाता है कि गन्ने में जहाँ–जहाँ गांठ होती है, वहाँ–वहाँ रस नहीं होता। अतः प्रेम का भी यही हाल होता है। यदि प्रेम में एक भी गांठ हुई, तो प्रेम गया समझो। वहाँ छल–कपट का कोई स्थान नहीं होता। प्रेम तो सच्चे लोगों का खेल है।

समाज में मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने हेतु **विनम्रता तथा मान–सम्मान** को बनाए रखना चाहिए। रहीम के अनुसार बड़े लोग अपनी बड़ाई नहीं करते या बड़ी–बड़ी बातें भी नहीं करते। वे हमेशा विनम्र, धीर और गंभीर होते हैं। रहीम कहते हैं कि स्वयंप्रकाशित हीरा कब कहता है कि मैं हीरा हूँ, मेरा मोल लाखों में है। ठीक उसी प्रकार बड़े लोग भी अपनी बड़ाई कभी नहीं करते। रहीम भगवान शिव का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि विश्वमंगल के भाव से भरे भगवान शिव शंभू ने आदर सम्मान पाकर हलाहल का पान किया और वे नीलकंठ जगदीश्वर हो गए। उधर कुटिल, स्वार्थी राहु को अमृत पीने पर भी अपमान पूर्वक अपना सिर गँवाना देना पड़ा। अतः मुनष्य को समाज में तेजस्विता एवं प्रतिष्ठा उसकी विनम्रता तथा मान–सम्मान के बिना प्राप्त नहीं होती।

सामाजिक एकता एवं समता के लिए मनुष्य में **परोपकार की भावना** होनी परम आवश्यक होती है। रहीम कहते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष अपने पास अपार फल होते हुए भी स्वयं फल न खाकर दूसरों की भूख मिटाते हैं और सरोवर जल की राशि होकर भी स्वयं पानी न पीकर दूसरों की प्यास मिटाते हैं। ठीक उसी प्रकार सज्जन लोग कभी भी संपत्ति का संचय नहीं करते। वे अपनी संपत्ति का दूसरों के लिए हमेशा उपयोग करते रहते हैं। रहीम के अनुसार वे लोग धन्य होते हैं जिनके अंग– अंग में परोपकार के भाव उमड़ते रहते हैं। परोपकार ही उनका धर्म होता है। इस कार्य के लिए उनको जो पुरस्कार मिलता है उससे प्राप्त होनेवाला आनंद ठीक वैसा ही होता है जैसे दूसरों के लिए मेहंदी पीसनेवाले की अपनी हथेलियाँ अपने आप रंग जाती है।

Scanned by CamScanner

भक्ति–भावना

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालन है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि।।1।।
रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखन हार है, माखन चाखन हार।।2।।

संगति का परिणाम

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।3।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।4।।

प्रेम का महत्व

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न मिले, मिले गांठ पड़ जाय।।5।।
रहिमन खोजे ऊख में, जहां रसनि की खानि।
जहां गांठ तहं रस नहीं, यही प्रीति में हानि।।6।।

विनम्रता तथा मान सम्मान

बड़े बड़ाई ना करें, बड़ों न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल।।7।।
मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस।।8।।

परोपकार की भावना

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियही न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपत्ति–सँचहि सुजान।।9।।
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाटन वारे को लगे, ज्यों मेहंदी को रंग।।10।।

■■■

Scanned by CamScanner

6. रैदास

हिंदी साहित्य के इतिहास में संतो की परंपरा में संत रैदास का नाम उल्लेखनीय है। उनके जन्म और मृत्यु को लेकर विद्वानों में अलग–अलग मतभेद हैं। जो भी हो रैदास का जन्म बनारस के पास मंडुवाडीह में 1456 में और मृत्यु 1584 को चित्तौड़ में हुई ऐसा माना जाता है। उनके पिता का नाम राघवदास, माता का नाम कर्माबाई और पत्नी का नाम लोना बताया जाता है। उनके संतान के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। वे जाति के चमार थे। उन्होंने स्वयं कहा भी है कि,

''नागर जना मेरी जाति विखियात चमारं,
रिदै राम गोविंद गुन सारं।''

रविदास के गुरु का नाम स्वामी रामानंद था। मेवाड़ की झालारानी उनकी शिष्या थी। कहा जाता है कि झालारानी ने स्वयं रानी होकर भी उनके भक्ति भाव से प्रेरित होकर उन्हें निमंत्रण देकर अपने घर बुलाया था और उनसे दीक्षा भी ली थी। यहाँ तक कि चित्तौड़ के कुंवर भोजराज की पत्नी मीराबाई भी रैदास की शिष्या थी। रैदास का जन्म भले ही चमार जाति में हुआ हो लेकिन परमात्मा के नाम का स्मरण करने से और भक्ति–भाव से उन्हें ब्राह्मणों (ऊँची मानी जानेवाली जाति) में भी आदर मिलता रहा। जन्म के आधार पर वे किसी को भी ऊंच–नीच नहीं मानते थे। पराधीनता का जीवन उन्हें पसंद नहीं था। तत्कालीन समय में भारत पर विदेशियों के आक्रमण और अत्याचार हो रहे थे तब उन्होंने भारतीयों को विदेशियों का मुकाबला कर पराधीनता से मुक्त होने को कहा है।

अन्य संतों की तरह संत रैदास ने भी समाज में प्रचलित जाति–पांति का खंडन करते हुए धार्मिक भाह्याडम्बरों का भी खुलकर विरोध किया है। वे हमेशा हिंदू मुस्लिम को मानवता का संदेश देते रहे। वे एक ऐसे राज्य की कल्पना करते थे जहाँ कोई छोटा–बड़ा न हो। आज से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व सामंतवादी और समाजवादी शासन व्यवस्था का विरोध कर समाज में समता और मानवता चाहनेवाले संत रैदास थे। रैदास के काव्य की ओर दृष्टि डालें, तो उनका काव्य गहन, चिंतनपूर्ण एवं वैचारिक है। हिंदू मुस्लिम एकता, छुआछूत का विरोध, वर्गहीन समाज की कल्पना, मानवतावाद, स्वतंत्रता, पराधीनता का विरोध आदि उनके काव्य की विशेषताएं हैं। उनका कार्य तत्कालीन

Scanned by CamScanner

समाज को एक सकारात्मक दिशा देनेवाला था और आज भी वह हमारे लिए प्रासंगिक है। उनकी भाषापर अरबी एवं फारसी भाषा का प्रभाव दिखाई देता है।

रचनाएँ– संत रविदास के 40 पद सिखों का धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। उनका 24 पदों का एक 'प्रहलाद चरित्र' भी उपलब्ध है और इसीके अलावा 200 साखियाँ पांडुलिपियों से प्राप्त हो चुकी हैं ।

ईश्वर भक्ति में जाति–पांति, धर्म, संप्रदाय, लिंग भेद, आयु आदि का कोई स्थान नहीं है। कोई भी भक्त अपनी सच्ची भक्ति से ईश्वर की भक्ति कर सकता है। यहां संत रविदास ने भी स्वयं चमार जाति का होकर भी ईश्वर की भक्ति अपने सच्चे हृदय से की है। उनकी इस सच्ची भक्ति भावना से ही समाज में उनका आदर का स्थान था।

संत रविदास **ईश्वर की सर्व व्यापकता** पर बल देते हुए कहते हैं कि इस सृष्टि का निर्माता एवं सृजनकर्ता सभी को एक ही नजर से देखता है अर्थात् सभी को एक जैसा ही प्रेम करता है। वह इस सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है। अतः हे मनुष्य तू उस ईश्वर को बाहर क्यों खोज रहा है वह तो तेरे ही शरीर के भीतर है। संत रविदास कहते हैं कि हे मनुष्य तू अपने मन को साधकर देख, तुझे वहां प्रिय ईश्वर का तेजस्वी प्रकाश दिखाई देगा।

संत रविदास समाज में प्रचलित **जाति–पांति के भेद भाव का विरोध** करते हुए कहते हैं कि समाज में लोग जाति–पांति के चक्कर में उलझकर रह गए हैं और यह जाति की बीमारी मनुष्यता को खाए जा रही है। रविदास जाति की अपेक्षा कर्म को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने कहा है कि जन्म के कारण कोई भी ऊंच–नीच नहीं होता। मनुष्य को तो उसके बुरे कर्म ही नीच बना देते हैं। अतः उसे हमेशा अच्छे कर्म करने चाहिए।

संत रविदास ने **हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल** दिया है। हिंदू मुस्लिम एकता को लेकर वे कहते हैं कि हे मनुष्य तू मुसलमान से दोस्ती कर और हिंदुओं से भी प्रेम कर क्योंकि रविदास के अनुसार सभी में उस सर्वव्यापी ईश्वर की ज्योति समाई हुई है। अतः सभी ईश्वर के लिए प्रिय होते हैं। इसीलिए मनुष्य को धार्मिक भेदभाव नहीं करना चाहिए। हिंदू और मुस्लिम में कोई भेद नहीं है, सभी में एक ही प्रकार का रक्त और माँस है। अतः मनुष्य तू विचार करके देख कि दोनों में कोई भेद नहीं है, दोनों समान हैं। अतः उनमें भेद नहीं करना चाहिए।

मनुष्य के जीवन में श्रम महत्वपूर्ण है। श्रम या परिश्रम को एक साधना के रूप में देखा गया है। **श्रम साधना का महत्व** बताते हुए संत रविदास कहते हैं कि, हे मनुष्य तुम अपने जीवन में श्रम तथा मेहनत करके खाओ और अपनी उपजीविका चलाओ क्योंकि इमानदारी और निष्ठा से की गई कमाई कभी भी बेकार नहीं जाती। मेहनत एवं परिश्रम से की गई कमाई से ही

हमारी जीवन नैया सहजता से पार हो जाती है। संत रविदास श्रम को ईश्वर के रुप में देखना चाहते हैं। अतः श्रम को ईश्वर के बराबर मानकर दिन–रात उसके बारे में सोचना चाहिए और वैसा ही कर्म करना चाहिए। जो ईश्वर के रूप में श्रम को अपनाता है उसे संसार में हमेशा सुख और चैन मिलते रहता है।

संत रविदास समस्त लोगों के लिए **रामराज्य की कल्पना** करते हैं। राम राज्य में सभी आजाद रहते थे। कोई किसी का गुलाम या दास नहीं था। इसीलिए पराधीनता को पाप कहते हुए संत रविदास कहते हैं कि हे मनुष्य (दोस्त) तू यह जान ले कि पराधीनता पाप है। रविदास के अनुसार जो दूसरों का दास है अर्थात् पराधीन है उसे कौन प्रेम कर सकता है। इसीलिए वे आगे कहते हैं कि मैं ऐसा रामराज्य चाहता हूं जहां सभी को अन्न मिले अतः कोई भी भूखा न रहे और साथ ही साथ छोटे बड़े अर्थात गरीब अमीर सभी समानता और प्रेम के साथ एक दूसरे से मिलकर रहे, तब जाकर मुझे अर्थात् सभी को प्रसन्नता मिलेगी।

Scanned by CamScanner

ईश्वर की सर्वव्यापकता

एक नजर सूं सबको देख, सृष्टि का सिरजनहारा।
सब घट व्यापक अलख निरंजन, कह रविदास विचारा।।1।।
बाहर खोजत का फिरइ, घट भीतर ही खोज।
'रविदास' उनमनि साधिकर, देखहु पिआ कूं ओज।।2।।

जाति–पांति के भेदभाव का विरोध

जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग।
मानुषता कूं खात इह, 'रविदास' जात का रोग।।3
'रविदास' जन्म की कारनै, होत न कोउ नीच।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम की कीच।।4।।

हिंदू–मुस्लिम एकता

मुसलमान सों दोसती, हिंदुअन सों कर प्रीत।
'रविदास' जोति सभ राम की, सभ हैं अपने मीत।।5।।
हिंदू तुरक मंहि नहीं कछु भेदा, सभ मंह एक रत्त अरु मासा।
दोउ एकह दुजा कोउ नांही, पेख्यो सोध 'रविदासा'।।6।।

श्रम साधना

'रविदास' श्रम करि खाइहि, जौ लौं पार बसाय।
नेक कमाई जउ कराइ, कबहुं न निहफल जाय।।7।।
श्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन।
'रविदास' तिन्हहि संसार मंह, सदा मिलहि सुख चैन।।8।।

रामराज्य की कल्पना

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
'रविदास' दास प्राधीन सों, कौन करै है प्रीत।।9।।
ऐसा चाहौं राज मैं, जहां मिलै सबन कौ अन्न।
छोट बड़ों सभ सम बसैं 'रविदास' रहैं प्रसन्न।।10।।

Scanned by CamScanner

7. मीराँबाई

हिंदी साहित्य के इतिहास में कृष्ण–भक्ति शाखा के अंतर्गत विष्णु के अवतार कृष्ण को आराध्य मानकर भक्ति करनेवाली मीरा एक प्रमुख स्त्री कृष्ण–भक्त है। वैसे कृष्ण की भक्ति करनेवाली मीरा के पूर्व दक्षिण की अण्दाल नामक कृष्ण भक्तिन का भी हिंदी साहित्य में उल्लेख मिलता है लेकिन उसके बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। भक्ति की भागीरथी संत मीराबाई का जन्म सन 1448 में कुडकी नामक गाँव में हुआ था ऐसा माना जाता है। पिता का नाम रत्नसिंह और माता का नाम वीर कुँवरी था। माँ की मृत्यु के पश्चात उसकी देखभाल तथा पालन–पोषण उसके दादा रावदुधाजी ने किया, जो एक वैष्णव–भक्त थे। मीरा अपने पितामह को बहुत चाहती थी। अतः उनकी कृष्ण–भक्ति का प्रभाव मीरा पर बचपन से ही पढ़े बिना नहीं रहा। वह जन्म से ही सुंदर, मृदुभाषी, दयालु थी और उसकी आवाज भी सरस, सुरीली एवं मीठी थी। उसके इन सभी गुणों की चर्चा सुनकर ही मेवाड़ के राजा राणा सांगा ने अपने पुत्र भोजराज के लिए मीरा के दादा रावदुधाजी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था, जिसे रावदुधाजी ने सहर्ष स्वीकार किया। तेरह वर्ष की आयु में ही मीरा का विवाह कुंवर भोजराज के साथ हुआ। कृष्ण–भक्ति में तल्लीन मीरा का मन अपने पति में नहीं लगा और दुर्भाग्यवश वह जल्दी ही विधवा हो गई। पति की मृत्यु के पश्चात तत्कालीन समाज की कुप्रथा के अनुसार जब सास ने मीरा को सती होने को कहा, तो मीरा ने शायद भारतीय इतिहास में पहली बार सामाजिक परंपरा सती प्रथा का विरोध करते हुए कहा था–

''सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हांरा मन मोहो धननामी।
जेठ बहू को नातों न राणा जी, हूँ सेवक थे स्वामी।।''

उसके पश्चात वह लोक लाज की परवाह किए बिना कृष्ण–भक्ति के रंग में रंगकर भजन–कीर्तन, नर्तन करने लगी। उन्होंने कुलमयार्दा एवं लोकलाज को त्यागकर स्वयं को पूर्णतः कृष्ण के प्रति समर्पित किया था। यहाँ तक कि कृष्ण भक्ति में तल्लीन मीरा ने कृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकार किया था। इस बात को लेकर उन्होंने खुलेआम लोकलाज की परवाह किए बिना कहा भी था कि,

''मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई।।''

Scanned by CamScanner

यह सुनकर मीरा के ससुरालवाले आवाक से रह गए। उन्होंने मीराबाई को बहुत यातनाएं दी। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात चित्तौड़ की गद्दी पर उसका बेटा राणा रत्नसिंह बैठा, उसके बाद राणा विक्रमादित्य बैठा, जो बहुत विलासी था। कहा जाता है कि राणा विक्रमादित्य द्वारा मीरा को मारने के लिए जहर का प्याला कृष्ण का चरणामृत कहकर दिया गया, पिटारे में विषैला साँप भेज दिया गया, यहाँ तक कि उसकी सोने की शैया को मृत्युशैया में परिवर्तित कर दिया गया था। लेकिन कृष्ण की कृपा से वह इन सारी मुसीबतों से सही सलामत बच गई। कितनी भी पीड़ा हुई हो मीरा ने खुद को कृष्ण–भक्ति से कभी भी विमुख नहीं होने दिया।

मीरा की कृष्ण–भक्ति में दैन्य और माधुर्य भाव पाया जाता है। उनके पदों में अपने आराध्य के प्रति अनन्य निष्ठा, नारी हृदय का समर्पण, तल्लीनता, कोमलता, आत्मनिवेदन, याचना, विरहभाव तथा वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। भक्ति की गहनता, स्वानुभूति की तीव्रता, भावों की तरलता, तन्मयता, चित्रात्मकता, संगीतात्मकता, गीतात्मकता आदि मीरा के काव्य की विशेषताएं हैं। मीरा के पदों में भावभंगिमाओं की जो विविधता दिखाई देती हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं। कृष्ण के प्रति मीरा की माधुर्य–भक्ति थी, जिसमें उसने अपना तन–मन–धन अर्पित किया था। मीरा ने अपने पदों की रचना राजस्थानी भाषा में की है। उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि मीरा सचमुच मेवाड़ की मरुभूमि की मंदाकिनी है, भक्ति की भागीरथी है एवं महिला कवियों की मुकुट मणि है। राजस्थान के रेगिस्तान में भक्ति की निर्मल धारा बहाकर उस भूमि को वृंदावन की वंदनीयता प्रदान करने का कार्य मीरा ने ही किया है।

रचनाएँ– राग गोविन्द, सोरठ के पद, गीतगोविंद की टीका, नरसीजी रो माहेरो तथा फुटकल पद आदि मीरा की रचनाएँ मानी जाती है।

संत मीरा ने विष्णु के अवतार कृष्ण को आराध्य मानकर उनकी भक्ति भाव में स्वयं को समर्पित किया था। कुल एवं लोक लाज की मर्यादा माने बिना वह कृष्ण भक्ति में, संतो की संगती में तल्लीन होकर गाती थी, नृत्य करती थी। उनके पदों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कृष्ण के प्रति उनका समर्पण भाव विशेष है। कृष्ण के सौंदर्य वर्णन के साथ–साथ उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी वीरह भावना को भी व्यक्त किया है। कहा जाता है कि उसके समर्पण भाव और अटूट भक्ति से जब जब उस पर समस्याएं आयी उसका निराकरण कृष्ण ने किया है।

मीरा ने कृष्ण के **रूप सौंदर्य** का वर्णन करते हुए कहा है कि जब से नंद राजा के बेटे कृष्ण के सौन्दर्य पर मेरी दृष्टि पड़ी तब से मुझे लोक–परलोक की कोई वस्तु भाती नहीं या कुछ भी मुझे सुहाता नहीं। कृष्ण के सिरपर मुकुट मोर पंख से शोभायमान है, माथे पर लगा हुआ केसरिया तिलक तीनों लोग को

मोहित करता है। उनके कानों के कुंडल की गालों पर पड़ी परछाई को देखकर ऐसा लगता है मानो मछली सरवर को त्यागकर यहाँ मकर को मिलने आ गई हो। ऐसे अनुपम सौंदर्य के सागर कृष्णपर मीरा स्वयं को समर्पित करती है।

जहां कृष्ण के रूप सौंदर्य ने मीरा को अपनी ओर आकर्षित किया वहाँ कृष्ण की प्राप्ति के अभाव ने उसे विरह की पीड़ा भी दी है। अतः मीरा के पदों में कृष्ण के प्रति **विरहानुभूति** की तीव्रता व्यक्त हुई है। यहाँ कृष्ण के प्रति अपनी विरह की अनुभूति को व्यक्त करते हुए मीरा ने कहा है कि, हे कृष्ण तुम्हारे दर्शन के बिना मुझे एक पल भी रहा नहीं जाता। तुम ही मेरे प्राण हो और बिना प्राण के मैं जीवन कैसे जी सकती हूँ। तुम्हें न देखने से, न मुझे कुछ भाता है, न मुझे नींद आती है। तुम्हारा विरह मुझे हमेशा सताता है जिससे मैं घायल की तरह इधर–उधर भटकती रहती हूँ। मेरी इस विरह वेदना या पीड़ा को कोई नहीं जानता। तुम्हारे अभाव में लगता है कि मैंने दिन खा कर और रातें सो कर गंवा दी हैं। तुम्हारे विरह में तड़पकर मेरे प्राण नष्ट हो रहे हैं और विरह की वेदना से रो–रोकर मेरी आंखें भी मैंने गंवाइ हैं। यहाँ कृष्ण के प्रति मीरा की तीव्र विरहानुभूति व्यक्त हुई है।

कहा जाता है कि विरह से ही प्रेम एवं भक्ति में निखार आ जाता है। सच्ची भक्ति और निष्ठा से ही भक्त अपने **प्रभु का अनुग्रह** प्राप्त करता है और मीरा ने भी अपनी सच्ची भक्ति और समर्पण भाव से ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया है। कहा जाता है कि मीरा के समर्पण भाव से ही हमेशा कृष्ण ने उसकी रक्षा की है। पति की मृत्यु के पश्चात मीरा का कुलमर्यादा एवं लोकलाज को त्यागकर साधु–संगति में जाकर मस्त भाव से कृष्ण–भक्ति के मग्न होकर गाना–नाचना मीरा के ससुरालवालों को अच्छा नहीं लगा तब उन्होंने उसे विविध प्रकार की यातनाएं दी। कहा जाता है कि जब राणा विक्रमादित्य द्वारा मीरा को मारने के लिए सांप का पिटारा मीरा के पास भेजा गया तब नहा धोकर जब मीरा ने उसे देखा, तो उसे उस पिटारे में पत्थर की मूर्ति दिखाई दी। इसके पश्चात राणाद्वारा जहर का प्याला भेज दिया गया तब वह जहर अमृत बनकर मीरा को अमर बना देता है। यहाँ भी जब सफलता नहीं मिलती तब राणा ने मीरा को सोने के लिए मृत्यु की शय्या बनाकर भेज दी। जब भजन एवं भक्ति भाव से मग्न होकर शाम होते ही मीरा उसपर सोने के लिए जाती है, तो वह मृत्युशय्या न होकर फूल की शय्या बन जाती है। लगता है मानो उस शय्या पर फूल बिछाए गए हो। इस प्रकार मीरा भजन भाव से मस्त होकर गिरिधर अर्थात कृष्ण पर स्वयं को न्योछावर कर देती है और कृष्ण हर समस्याओं में उसकी रक्षा करते रहते हैं। यहां एक भक्त की ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति को दर्शाया गया है।

Scanned by CamScanner

रूप सौंदर्य

जब से मोहिं नंदनंदन दृष्टि पड्यो माई।
तब से परलोक लोक कछु ना सुहाई।।1।।
मोरन की चंद्र कला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहे।।2।।
कुण्डल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।।3।।

बिरह की अनुभूति

घड़ी एक नहिं आवडे, तुम दरसन बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।।टेक।।
धान न भावे नींद न आवे, बिरह सतावे मोय।
घायल सी घूमत फिरुँ रे, मेरा दरद न जाणे कोय।।1।।
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाई रोय।।2।।

प्रभु का अनुग्रह

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।।टेक।।
सांप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।।1।।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।।2।।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।।3।।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव से मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।।4।।

■■■

Scanned by CamScanner

8. बिहारी

हिंदी साहित्य के इतिहास की रीति काव्य परंपरा में शृंगार एवं सौंदर्य के पारखी एवं सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी का जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविंदपुर ग्राम में 1595 में हुआ और मृत्यु 1664 में मानी जाती है। उनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का बचपन बुंदेलखंड में, युवावस्था ग्वालियर में तथा प्रौढ़ावस्था ससुराल मथुरा में बीती है। कहा जाता है कि शाहजहाँ के पुत्र–जन्मोत्सव के अवसर पर आगरा में सभी राजा महाराजाओं की हुई सभा में इन्होंने अपनी कविता सुनाई थी जिससे प्रभावित होकर सभी ने इन्हें श्रेष्ठ कवि का प्रमाणपत्र दिया था। मेधावी प्रतिभा के धनी बिहारी को साहित्य शास्त्र, संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य, ज्योतिष शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, गणित शास्त्र, दर्शनशास्त्र, पौराणिक ज्ञान, कृषिविषयक, राजनीति विषयक, युद्ध कला, नीति विषयक, लोक संबंधी, भक्ति संबंधी, कामशास्त्र, आखेट कला, संगीत आदि विविध विषयों का ज्ञान था।

बिहारी के शृंगार एवं सौंदर्य वर्णन के दोहों के साथ साथ नीति विषयक दोहें भी काफी प्रसिद्ध हैं। वे जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में कवि थे। उनके दोहों में मनुष्य के मन को परिवर्तित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। कहा जाता है कि जब राजा जयसिंह अपनी नवोढा पत्नी के प्रेम में मशगुल होकर अपने सामाजिक, राजनीतिक दायित्व एवं कर्तव्य को भूल गए थे, तब बिहारी ने एक दोहा लिखकर राजा के पास भेज दिया था जिसे पढ़कर राजा का मन परिवर्तित हुआ और वे कर्तव्य दक्ष बनकर पुनः समाजकार्य एवं राजकार्य में जुड़ गए। बिहारी के दोहे जहाँ लोगों का रंजन करते हैं, वहाँ विविध विषयों के ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक एवं नैतिकता का परिचय भी देते हैं।

रचना– बिहारी सतसई।

बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है जिसमें 713 दोहे संग्रहित हैं। 'बिहारी सतसई' की ख्याति असाधारण है। इस रचना के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "शृंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान 'बिहारी सतसई' का हुआ उतना और किसी का नहीं। इनका एक–एक दोहा हिंदी साहित्य में रत्न माना जाता है।" इससे 'बिहारी सतसई' की महत्ता एवं ख्याति हमारे सामने आ जाती है।

बिहारी के दोहों में कृष्ण–राधा के प्रति भक्ति भावना के साथ–साथ नायक–नायिका भेद एवं उनकी मोहक रुपों, प्रेम क्रिडाओं का संयोग–वियोग

Scanned by CamScanner

की विविध दशाओं के साथ चित्रण मिलता है। 'बिहारी सतसई' में नायिका की चंचल अभिव्यक्ति हुई है। उसमें जीवन की धड़कने सुनाई नहीं देती। बिहारी की नायिका सौंदर्य की मूर्ति है, एक सजी सजाई गुड़िया है जिससे बस रसिकों का मनोरंजन ही हो सकता है। एक परिष्कृत रुचि के प्रेमी हृदय की तृप्ति उसमें संभव नहीं है। बिहारी का अधिकांश जीवन वैभव विलास और राज दरबारों में बीता है इसीलिए वह नागरिक संस्कृति के समर्थक थे। उन्होंने अपनी अन्योक्तियों के द्वारा अशिक्षित, गँवार और सर्व सामान्य व्यक्ति का मजाक उड़ाते हुए नागरिक भावनाओं, कामनाओं और लालसाओं का वर्णन किया है। मनुष्य के श्रेष्ठ गुणों का परिपूर्ण विकास नागरिक जीवंन में ही होता है इसपर उनका दृढ विश्वास था।

बिहारी का भाव संसार जितना समृद्ध है उनकी भाषा भी उतनी ही संपन्न है। बिहारी ने अपने दोहों में गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है। इसीलिए तो उनके दोहों के बारे में कहा जाता है कि,

"सतसैया के दोहरे, जस नावक के तीर।
देखन में छोटे लागत, घाव करै गंभीर।।"

बिहारी ब्रज भाषा के सम्राट एवं युग प्रवर्तक कवि थे। बिहारी सतसई की भाषा पात्रानुकूल है। तत्सम शब्दों के साथ–साथ उर्दू, फारसी, अवधी, राजस्थानी, बुंदेली आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग उसमें मिलता है। लाक्षणिक शब्दावली के प्रयोग ने भाषा के सौंदर्य में चार चांद लगा दिए हैं।

बिहारी की रचना 'बिहारी सतसई' में अभिव्यक्त विविध भावतरंगों से स्पष्ट होता है कि वे बहुज्ञानी एवं मेधावि प्रतिभा के धनी थे। उनकी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' में भक्ति, नीति, श्रृंगार, प्रकृति आदि विविध विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले दोहे हैं। जहाँ बिहारी ने राधा कृष्ण के प्रति अपनी **भक्ति भावना** को व्यक्त किया है वहाँ एक ओर राधा के प्रति अपने भक्ति भाव को व्यक्त करते हुए बिहारी कहते हैं कि जिनके शरीर की छाया पड़ते ही कृष्ण भी हरे–भरे अर्थात आनंदित हो जाते हैं, ऐसी चतुर राधा जी मेरी संसार की समस्त बाधाओं को, पीडाओं को दूर करो। यहां बिहारी ने रंगशास्त्र का भी आधार लिया है। रंगशास्त्र के अनुसार पीला और नीला रंग समप्रमाण में मिलाने से हरा रंग बन जाता है और हरा रंग आनंद का प्रतीक माना जाता है। यहां कृष्ण नीले अर्थात सांवले रंग के हैं और राधा गोरी अर्थात पीले रंग की है। जब भी कृष्ण राधा के पास आते हैं, तो राधा की गौर वर्ण अर्थात पीले रंग की परछाई कृष्ण के शरीर पर पड़ने से कृष्ण का नीला रंग हरा हो जाता है अर्थात कृष्ण आनंदित हो जाते हैं। तो दूसरी ओर कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करते हुए बिहारी कहते हैं कि इस कृष्ण के प्रेम में डूबे हुए चित्त की स्थिति को समझा नहीं जा सकता क्योंकि उसकी स्थिति बड़ी विचित्र होती है। यह अनुरागी चित्त

जैसे–जैसे शाम रंग में, काले रंग में अर्थात् कृष्ण–भक्ति में डूबते जाता है, वैसे–वैसे वह उज्ज्वल अर्थात् सफेद होते जाता है। यहाँ विरोधाभास अलंकार के माध्यम से बताया गया है कि यह अनुरागी मन जैसे–जैसे कृष्ण–भक्ति में डूब जाता है, वैसे–वैसे वह उज्ज्वल अर्थात पवित्र होते जाता है। यहां कृष्ण के प्रति बिहारी की भक्ति भावना व्यक्त हुई है।

बिहारी ने अपनी रचना में श्रृंगार वर्णन की संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा सुंदर और आकर्षक वर्णन किया है। **संयोग श्रृंगार** में बिहारी ने नायक नायिका के भाव तरंगों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। वे कहते हैं कि भरे भवन में नायक और नायिका सभी लोगों के बीच अपनी आंखों ही आंखों से बातें करते हैं। उस समय उनकी आंखे कभी कुछ कहती है, कभी संवरती है, कभी प्रसन्न होती है, कभी रूठती है, कभी एक दूसरे से मिलती है, कभी खिलती है, तो कभी लज्जा सी झुक जाती है। अर्थात आंखों के माध्यम से उन्होंने नायक नायिका की विविध भाव छटावों को यहां अभिव्यक्त किया है। इतना ही नहीं जब नायक और नायिका दोनों मिलकर रस्ते से निकलते हैं तब नायिका चिकने रास्ते से चलती है और नायक कंकरीले रास्ते से चलता है। नायक के पैरों में जब कंकर चूबते हैं, तो उसकी चुभन को नायिका अनुभव करती है जिसे वह अपना नाक टेढ़ा मेढ़ा कर उसके प्रति हो रही पीड़ा को व्यक्त करती है। छैल छबीली नायिका का टेढ़ा मेढ़ा हुआ नाक नायक को अच्छा लगता है और वह जानबूझकर पुनः कंकरीले रस्ते से जाता है ताकि वह नायिका की वेदनानुभूति को बार–बार देख सकें।

वियोग श्रृंगार के अंतर्गत नायिका की नायक के प्रति तीव्र विरह भावना व्यक्त हुई है। यहां विरहीनी नायिका कहती है कि, हे प्रिय, हे लाल तुम्हारे विरह की अग्नि बड़ी अनुप और अपार है। विरह से जो आखों से आंसू बरस रहे हैं, झर रहे हैं, तो उसकी झड़ी से भी यह विरह की अग्नि नहीं मिटती। इतना ही नहीं विरह से त्रस्त नायिका आखिर में कहती है कि मैंने यह सोच समझकर निश्चय किया है कि विरह में जलने से अच्छा है मरना क्योंकि मरने से दोनों में से किसी एक का दुख नष्ट हो जाता है लेकिन विरह में तो दोनों को दुख होता है।

बिहारी के **नीति विषयक विचार** तो काफी प्रसिद्ध है। बिहारी सतसई में नीति विषयक विविध प्रकार के दोहे मिलते हैं, जो समाज का प्रबोधन करने में और मनुष्य जीवन में नैतिक परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। बिहारी धतूरे और सोने (स्वर्ण) का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि कनक कनक अर्थात एक कनक का अर्थ धतूरा है और दूसरे का सोना। तात्पर्य दोनों में एक दूसरे से बढ़कर मादकता या नशा है। एक को खाने से, तो दूसरे को प्राप्त करने से आदमी पागल बन जाता है अर्थात उसको नशा आ जाती है। बिहारी के दोहे

Scanned by CamScanner

भक्ति भावना

मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परै, स्यामु हरित–दुति होइ।।1।।
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूडे स्याम रंग, त्यों त्यों उज्जलु होइ।।2।।

संयोग श्रृंगार

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सौं बात।।3।।
नाक चढै सीबी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै, प्यौ कँकरीली गैल।।4।।

वियोग श्रृंगार

लाल तुम्हारे विरह की, अगनि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हूँ, झर हूँ मिटै न झार।।5।।
मरनु भलौ बरू बिरह तै, यह निश्चय करि जोइ।
मरन मिटै दुखु एक कौ, बिरह दुहूँ दुखु होइ।।6।।

नीति विषयक विचार

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
इहि खाय बौराय उहि पाय बौराय।।7।।
नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगे कौन हवाल।।8।।
अति अगाधु अति औथरौ, नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागर, जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ।।9।।
दुसहा दुराज प्रजाजन को, क्यों न बढे दुख द्वंद।
अधिक अंधेरा जग करै, मिली मावस रवि चंद।।10।।

■■■

Scanned by CamScanner